Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SHISRRJ | Volume 1 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

प. दीनदयाल उपाध्याय के समष्टि से परमेष्ठि तक का चिन्तन का प्रभाव

डॉ. कल्याण सिंह मीना
लेवल – 2 अध्यापक
राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय महाराजपुरा,
तहसील – बस्सी, जिला – जयपुर , राजस्थान

सारांश- चारों पुरुषार्थों से परिपूर्ण व्यक्ति-जीवन से प्रारम्भ कर आगे चलकर परिवार, समाज, राष्ट्र और समूचे मानव-समाज तक की बढ़ती कक्षाओं और उनके बीच परस्पर एकात्म संबंधों का विचार हमने अब तक किया। किन्तु भारतीय संस्कृति की इसे भूमि में विकसित एकात्म दर्शन' केवल मानव के पास आकर ही नहीं रुकता। वह प्रकृति की मानवेतर प्राणि-सृष्टि. वनस्पति-सृष्टि और प्रकृति की दी हुई अन्य बातों का भी विचार करता है। मानव-जीवन का इस प्रकार सर्वांगीण विचार करते समय इन सभी बातों का उसमें समावेश करना एक परिपूर्ण एकात्म दर्शन के नाते उपयुक्त एवं अपरिहार्य भी है। जल, वायु, सूर्यप्रकाश, वनस्पति एवं प्राणी, खनिज सम्पदा आदि हमारे जीवन के साथ ऐसे जुड़े हुए हैं कि उनके बिना जीवन का केवल सुखोपभोग ही नहीं अपितु प्रत्यक्ष में जीवन भी असम्भव हो बैठेगा। उदाहरणार्थ- प्राणि-सृष्टि और वनस्पति-सृष्टि में दिन-रात चल रहा ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड का लेन-देन, और इस लेनदेन पर निर्भर उन दोनों के जीवन इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। प्रकृति से मिली वस्तुओं में वायु और पानी की आपूर्ति विपुल है। (विविध प्रकार के यंत्रोद्योगों के बेरोकटोक विकास और उनके केन्द्रीयकरण के कारण होने वाले प्रदूषण के परिणामस्वरूप शुद्ध वायु और शुद्ध जल की आपूर्ति भी चिन्ता का विषय बन गया है।) वनस्पति-सृष्टि और मानवेतर प्राणि-सृष्टि में खनिज द्रव्य जैसी वस्तुएँ अपेक्षाकृत सीमित होती हैं। इस सीमित सम्पदा का हम बिना किसी अंकुश के उपयोग करते रहे तो वह हमारे लिए कितने समय तक पर्याप्त रहेगी, सोचने की बात है। साधन-सामग्री के प्रकृतिदत्त भण्डारों को भी अन्ततः कुछ सीमा तो होती ही है, इसे भुलाया नहीं जा सकता। किन्तु प्रकृति से मिलने वाली सम्पदा का उपयोग करते समय, उसका भण्डार कितना कम या अधिक है, और वह कितने समय तक पर्याप्त रहेगा, केवल इसी दृष्टि से सोचने से काम नहीं चलेगा। प्रकृति की भिन्न-भिन्न वस्तुओं में एक प्रकार से परम्परावलम्बन का चक्रीय संबंध (साइक्लिक रिलेशनशिप) होता है, एक संतुलन भी होता है, उसका भी विचार करना होगा। सुखोपभोग के लालच के कारण हम प्रकृति से मिलने वाली साधन-सम्पदा का अनियंत्रित उपयोग करते हुए उसे नष्ट करने लगे तो यह साधन-संतुलन बिगड़ जायेगा और उसके भीषण परिणाम हमें भोगने पड़ेंगे। प्राकृतिक सम्पदा का अविचार से कैसा दुरुपयोग और विनाश किया जाता है, इसके उदाहरण के रूप में इन दिनों हमारे देश में जो अनाप-शनाप जंगल कटाई चल रही है उसकी ओर अंगुलि-निर्देश किया जा सकता है। इस संदर्भ में एक सर्वेक्षण किया गया था। उसके अनुसार भारत में उपलब्ध कुल 33 करोड़ हैक्टेयर भूमि में से लगभग सात करोड़ हैक्टेयर अर्थात् पाँचवें भाग पर जंगल हैं। देश के कुल भूमि-क्षेत्र में एक तिहाई क्षेत्र में जंगल हों और उसमें भी पर्वतों पर 60 प्रतिशत क्षेत्र में जंगल हों, ऐसी संस्तुति राष्ट्रीय वन-नीति समिति ने सन् 1952 में की थी। किन्तु वन-विभाग की ही सांख्यिक जानकारी के अनुसार प्रतिवर्ष 45 लाख हैक्टेयर भूमि पर से जंगल काटे जा रहे हैं।

इस जंगल कटाई के दुष्परिणाम ये हो रहे हैं कि वर्षा अनियमित हो गयी है। भूमि की उपजाऊ मिट्टी का भारी मात्रा में क्षरण हो रहा है और देश की खेती-बाड़ी (अन्न उत्पादन) को भी उसका कुफल भोगना पड़ रहा है। इसके दुष्परिणाम न केवल इन क्षेत्रों में, अपितु अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई देने लगे हैं। उदाहरण के लिए देश का तेजी से आर्थिक विकास हो, इस हेतु बनाये गये बड़े-बड़े

बाँधों के जलाशयों की तली में कीचड़ एकत्र होने की गति पिछले कुछ वर्षों में चार गुनी हो गयी है। जंगल कटाई के कारण भूमि का जो क्षरण होता है, यह उसी का परिणाम है। फलस्वरूप इन जलाशयों की उपयोगिता की प्रारम्भ में जो काल-सीमा मान ली गयी थी, वह भी तीव्रता से कम होती जा रही है।

मानवेतर प्राणि-सृष्टि के संहार की कहानी भी ऐसी ही है। विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लालच में बाघ, सर्प, बन्दर, मोर आदि जंगली पशु-पक्षियों का निरंकुश संहार हुआ है। मेढक की टांगों के निर्यात के लिये टनों मेढक मारे जाते हैं. परिणामस्वरूप इन मेढकों द्वारा खेतों में खा लिये जाने वाले कीटों का उपद्रव बढ़ गया है और धान की खेती को अत्याधिक हानि उठानी पड़ रही है। ये विषय विधान-सभा और लोकसभा में भी उठाये गये हैं।

मानव द्वारा प्रकृति का यह जो निरंकुश शोषण किया जा रहा है, उसके बारे में पंडित दीनदयाल जी ने कहा है- "उद्देश्यपूर्ण, सुखी एवं विकासशील जीवन के लिए जिन भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है, वे साधन हमें अवश्य प्राप्त होने चाहिए। ईश्वर द्वारा निर्मित सृष्टि का सूक्ष्म अध्ययन करने पर हमें दिखाई देगा कि कम से कम इतना प्रावधान ईश्वर ने निश्चित ही कर रखा है। किन्तु यह मानकर कि ईश्वर ने मनुष्य को जन्म केवल उपभोग के लिये दिया है, हम यदि सारी शक्ति एवं उपलब्ध साधन-सम्पदा को निरंकुशता से खर्च करने लगें तों वह कदापि उचित नहीं होगा। इंजन चलाने के लिये कोयले की आवश्यकता होती है, किन्तु कोयले की खपत के लिये इंजन नहीं बनाया होता। कम से कम ईधन का उपयोग कर अधिक से अधिक शक्ति का कैसे निर्माण किया जाय. इसके लिए हम प्रयत्नशील होते हैं। यही दृष्टिकोण उचित है। उसी प्रकार मानवीय जीवन के उद्देश्य को आँखों से ओझल न होने देते हुए कम से कम ईधन (उपभोग सामग्री) से अधिक से अधिक गति उत्पन्न कर हम अपने ध्येय को प्राप्त कर सकें. ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। यह व्यवस्था करते समय मानव-जीवन के एकाध पक्ष का ही विचार न करते हुए उसके सम्पूर्ण जीवन का एवं अंतिम लक्ष्य का विचार भी आवश्यक है। यह व्यवस्था प्रकृति का शोषण करने वाली न होकर, उसके पोषण के लिये सहायक बनने वाली होनी चाहिए।

वस्तुतः प्रकृति से हमें उतनी ही सामग्री और वह भी इस ढंग से लेनी चाहिए कि उसकी भरपाई प्रकृति अपने आप कर सके। उदाहरण के लिए वृक्ष से बीज लेने पर उसकी हानि नहीं होती, प्रत्युत् लाभ ही होता है। किन्तु भूमि से अधिक उत्पादन लेने के लालच में आजकल हम ऐसे प्रयोग कर रहे हैं जिनके कारण कुछ समय बाद भूमि की उत्पादन-क्षमता ही समाप्त हो जायेगी।

आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति मुख्यतः भौतिकवादी एवं भोग-प्रधान होने के कारण सृष्टि में मनुष्य प्राणी ही सबसे मुख्य मान लिया गया है। मानवेतर सृष्टि केवल उसकी सुख-सुविधा के लिये है, प्रकृति पर विजय (Conquest of Nature) पाकर मानव उसे अपनी सेवा में जोत लेता है, ऐसी पाश्चात्य संस्कृति की भूमिका है। भारतीय संस्कृति ने यह बात मानी है कि मानव-जीवन तथा उसके विकास में प्रकृति का योगदान बहुत बड़ा है। किन्तु प्रकृति से युद्ध कर, उसे हतबल कर, उसका शोषण करें, ऐसी उसकी भूमिका नहीं। भारतीय चिन्तन की भूमिका यह है कि प्रकृति का शोषण नहीं, दोहन कर मानव अपना विकास करे, प्राकृतिक सम्पदा का पोषण एवं संवर्धन करे तथा प्रकृति मानव का पालन-पोषण और संवर्धन करे। यह भूमिका परस्पर पूरकता की है, संघर्ष की नहीं।

किन्तु भारतीय संस्कृति की यह भूमिका केवल उपयोगितावाद से निकली बुद्धिमानी न होकर आत्मीयता के बढ़ते जाने वाले स्तरों की एक विलोभनीय अभिव्यक्ति है। भारतीय संस्कृति ने मानवेतर सृष्टि को अपने परिवार में समा लिया है। त्यौहार, उत्सव, धार्मिक विधि, साहित्य आदि बातों में इस मानवेतर सृष्टि को उसने सम्मान का एवं आत्मीयता का स्थान दिया है। नमूने के लिये कुछ उदाहरण देखने योग्य हैं। हमारे यहाँ परमात्मा के दस प्रमुख अवतार माने गये हैं। इनमें से पहले तीन अवतार मत्स्य, कर्म, वराह मानवेतर प्राणियों के रूप में हैं। चौथा नरसिंह आधा नर और आधा सिंह है। विविध देवताओं के वाहन भी इस परिप्रेक्ष्य में निरीक्षण के योग्य हैं। निर्गुण के मूल आरम्भ और साथ ही 'सभी गुणों के ईश' विघ्नहर्ता गणेश का वाहन चूहा है। लम्बोदर गणेश मूषकध्वज हैं, और उनके पिता शंकर जी नन्दी बैल पर आरूढ़ हैं। परिपाटी यही है कि पहले नन्दी को नमन किये बिना शंकर जी के मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। महादुर्गा सिंह पर आरूढ़ हैं। वागीश्वरी सरस्वती हंस-वाहिनी हैं। भक्तवत्सल भगवान विष्णु भक्तों को गुहार सुनने गरुड़ पर बैठकर आते हैं। देवताओं के साथ मानव-परिवार में सम्मिलित होने वाला गरुड़ अकेला पक्षी नहीं है। अन्य

पक्षी भी हैं। छोटे बच्चों का कथा-संसार 'एक था कौआ, एक थी चिड़िया' वाली कहानी से प्रारम्भ होता है। भारत का राष्ट्रीय पक्षी होने का गौरव अब मोर को प्राप्त हुआ है। किन्तु भारतीय संस्कृति के वाल-विश्व में कौआ तो कब का आसन जमा बैठा है।

"कौए आ, चिड़िया आ, दाना खा, पानी पी।
मुन्ने के सिर पर कर पी-पीं।।"

इस प्रकार कौओं और चिड़ियों को हमने नन्हें-मुन्नों का मित्र बना दिया है। मनुष्य के मरने के बाद उसे सद्गति प्राप्त हुई है या नहीं. यह बात उसके पिंड को कौआ स्पर्श करता है या नहीं, इसी से जानी जाती है। शरीर से काला. सब प्रकार के अभक्ष्य पदार्थ खाने वाला यह कौआ! किन्तु भारतीय संस्कृति ने उसे भी अपने में इस प्रकार समा लिया है।

और वनस्पति-सृष्टि? वह भी पीछे नहीं है। भारतीय संस्कृति में परमात्मा भक्तिभाव से समर्पित "पत्रं पुष्पं फलं तोय" से प्रसन्न होने वाले हैं। शंकर जी को बेलपत्ती प्रिय है. गणेश जी को दूर्वा, विष्णु को तुलसी। सारी द्वारिका के मणि-मौक्तिक आभूषणों से श्रीकृष्ण की तुला पूरी नहीं हो सकी थी, वह रुक्मिणी के एक तुलसी-पत्र से पूरी हो गयी। यहाँ बरगद और पीपल के व्रतबंध हैं, शमी का पूजन है और तुलसी का विवाह भी है। पूजा के लिए सुपारी आवश्यक होती है, नारियल लगता है। नीराजना या आरती के दीप के लिए कपास की बत्ती आवश्यक होती है। मंगल-प्रसंग के अवसर पर अशोक या आम की टहनियों का वन्दनवार लगाया जाता है। यहाँ भूमि भी भोग-भूमि न होकर, धर्म-भूमि, पुण्य-भूमि, वत्सला भूमि है, वह भूमि माता है। नदियाँ केवल पीने के लिये या खेती के लिये पानी देने वाली जनवाहिनियाँ न होकर, लोकमाताएँ हैं। गाय केवल उपयोगी पशु न होकर यहाँ गौमाता है। ये सारे मानो जगज्जननी के विविध रूप हैं। इस प्रकार, प्रकृति की ओर देखने की भारतीय संस्कृति की दृष्टि भोग-वासना से सनी नहीं है, बल्कि अगाध भक्ति-भावना

और आत्मीयता से ओतप्रोत है। और आकाश के ग्रह तथा तारे? इन ग्रह-नक्षत्रों के भ्रमण से मानव-जीवन पर इष्ट और अनिष्ट परिणाम क्या-क्या होते हैं, इसका विज्ञान भी हमारे यहाँ पर्याप्त उन्नत हुआ है। प्रकृति-शास्त्रों में ज्योतिष शास्त्र का भी समावेश है। किन्तु अभी यहाँ वह इस संदर्भ में हमें अभिप्रेत नहीं। "सूर्य आत्मा जगतस्त स्थुषः" अर्थात् सूर्य सारे विश्व को आत्मा है. ऐसा यहाँ माना गया है। ऐसे सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना यहाँ का नित्य-नियम है। रथ-सप्तमी के दिन दोपहर में सूर्य को शर्करा-मिश्रित दूध का भोग चढ़ाया जाता है; आश्विनी पूर्णिमा की रात में चन्द्र को इसी प्रकार दूध का भोग चढ़ाया जाता है और चन्द्रमा वनस्पति का अधिपति होने के कारण उस भोग को स्वीकार कर उसमें अमृत-सिंचन करता है, ऐसी हमारे यहाँ मान्यता है। विज्ञान की सहायता से मनुष्य अब चन्द्रमा पर पहुंच गया है और वहाँ के कंकड़-पत्थर बीन कर लाने लगा है, किन्तु शरद-पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा चाँदनी के साथ इस भूमि के 'अमृत-पुत्रों' के लिये अमृत की वर्षा भी करता है, यह धारणा इस विज्ञान की उपलब्धि से सौ गुनी अधिक मनोहारी है। चन्द्रमा को हमारी भारतीय संस्कृति ने चन्दामामा बनाकर उसे अपने आप्तजनों में लाकर बैठाया है। जिन बहिनों का अपना कोई भाई नहीं होता, वे सब भैयादूज के दिन हमारी संस्कृति द्वारा दिये गये इस चन्द्रमा को ही अपना भाई मानती हैं और माँ के भाई के रूप में अपने नन्हे-मुन्नों को उसका परिचय चन्दामामा कहकर करवाती हैं।

मनि मौसी, लोकमाता, गंगामाता, भूमाता कितने उदाहरण हैं! एकात्मता की यह जीती-जागती अनुभूति और यह बोध व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र के चढ़ते क्रम से समस्त मानव-समूह को अपने में समा लेता है। किन्तु यहीं तक संतोष न मानकर वह मानवेतर प्राणि-सृष्टि को भी अपनी कक्षा में समा लेता है तथा सबके आदिकारण परमेष्ठी की दिशा में उड़ान भरता है। एकात्म दर्शन की उड़ान ऐसी उत्तुंग है, एक व्यष्टि से लेकर परमेष्ठी तक।

संदर्भ ग्रंथा –

[1] डॉ0 महेश चन्द्र शर्मा	(i) दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाङ्मय (खण्ड 1 से 15)
	(ii) पं0 दीनदयाल उपाध्याय
	(ii) इकोनॉमिक फिलॉसफी एण्ड दीनदयाल उपाध्याय
[2] हरीश दत्त शर्मा	पं0 दीनदयाल उपाध्याय
[3] प्र.ग. सहस्रबुद्धे	पं0 दीनदयाल उपाध्याय (मेरी स्मृति में)
[4] सुरेश कुमार सोनी	ए विब्रान्त ह्यूमेनिस्ट
[5] डॉ0 विनोद मिश्रा	पं0 दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद का दर्शन
[6] विसंत राज पण्डित	इनटेग्रल ह्यूयेनिज्म
[7] कृष्णानन्द सागर	दीनदयाल उपाध्याय की वाणी
[8] पी0 परमेश्वरन	गांधी, लोहिया और दीनदयाल